दादी का कमरा

आशुतोष

दादी का कमरा

दादी की चारपाई बीच रास्ते में पड़ी थी।

दरअसल वह हमारे घर का दालान था, दालान बोले तो हमारे घर का चाँदनी चौक। दालान से हमारे घर के किसी भी हिस्से में पहुँचा जा सकता था, दालान में चारों तरफ

दरवाजे थे, दक्षिण में सीढ़ी घर का दरवाजा, पूरब में बाहर की तरफ निकलने वाला दरवाजा तथा पश्चिम की तरफ अंतःपुर का दरवाजा था, उत्तर में था सबसे खास सबसे हसीन दरवाजा जो दादी के कमरे में खुलता था। दादी का कमरा यानी हम बच्चों का रहस्यलोक, 'एलिस इन वंडरलैंड' की तरह ही हम दादी के कमरे में भौचक रहते थे, दादी के कमरे में हमेशा एक मीठा सा अँधेरा छाया रहता था, वैसे तो दादी के कमरे में एक खिड़की बाहर की तरफ खुलती थी, किंतु उस पर स्थायी रूप से एक पुराना बॉक्स, पेट्रोमेक्स, हवा भरने वाला पंप और शायद दादी के युवाकाल का एक हारमोनियम का ढाँचा रखा रहता था तो वहीं कमरे में मौजूद एकमात्र झरोखे पर डलिया और मूँज से बना एक 'मुनिया' जिसमें शायद दादी के विवाह में 'सिन्होरा' आया होगा, रखा रहता था।

इतनी सारी प्रागैतिहासिक काल की चीजों ने दादी के कमरे की खिड़की को झरोखे में और झरोखे को सुराख में बदल दिया था, कमरे में रोशनी के इन माध्यमों के प्रयोजन विस्तार से दादी के कमरे में एक पारंपरिक अँधेरा कायम था।

दादी के कमरे में लकड़ी की एक पुरानी आलमारी थी, जिसे दादी अपने मायके से लाई थीं। उस आलमारी के बारे में मैं यह सोचता था कि निश्चय ही उसके भीतर एक सुरंग है जो दूर कहीं बादलों के उस पार तक जाती है, इसलिए जब कभी उस कमरे में सिर्फ मैं और वह आलमारी रहते, तब मुझे डर लगता था थोड़ा-थोड़ा।

दादी के कमरे के बारे में घर के सभी लोगों की अलग-अलग राय थी, किसी को वह तरह-तरह के अचारों का जखीरा लगता तो किसी को सूखे मेवों का भंडार, घर की बहुओं को वह चाँदी के सिक्कों और जेवरों का खजाना लगता था तो वहीं बड़े हो रहे पोते-पोतियों को वह कमरा हर बात में टोका-टिप्पणी का मोर्चा लगता था।

खैर, वह कमरा घर का 'पावर हाउस' था। दादी से मेरा लगाव थोड़ा ज्यादा था। कारण सिर्फ इतना ही था कि मैं बचपन से ही बड़ा किस्सागो था। जितनी बातें खुद करता, उतना ही दूसरों की सुनता भी था। हमारे घर के बूढ़ों के पास बहुत सारी बातें होती हैं। अतः मैं अपने मतलब के लिए दादी से चिपका रहता था और दादी पता नहीं कब की और कहाँ की बातें-किस्से मुझको सुनाती रहतीं, बूढ़ों के पास उम्र का ही नहीं यादों का

भी बोझ होता है। बूढ़े अपनी उन यादों को जितना बाँटते है, उतनी ही उम्र की वो बर्फ पिघलती है, देह पर जमी उम्र की इस बर्फ का पिघलना युवा होने की नहीं, स्वयं को धीरे-धीरे खाली करने की प्रक्रिया है।

मेरे और दादी के तालमेल के बीच में उनकी बातें ही थीं। बचपन के दिनों की उन तमाम रातों में दादी ने उस घर के निर्माण की कथा मुझे कई बार सुनाई थी। इतनी बार मैंने वह कहानी सुनी है कि लगता है जैसे मैं उस घर की हर ईंट का पता जानता हूँ। दादी जब दुल्हन बन कर आई थीं तब दादा के पास पिता के नाम पर सिर पर एक फूस का छप्पर और माँ की जगह दो ढाई बीघे जमीन थी। अनाथ दादा के अथक श्रम और प्रयासों के बाद वह घर बन कर तैयार हुआ था। दरअसल दादी ही वह जमीन थी। जिसमें दादा ने अपने साहस और अरमानों के फूल बोए थे। वह घर इस तरह सामने आने से पहले न जाने कितनी बार दादी के ख्वाबों में आया होगा।

दादी का घर बन गया था। जिंदगी धीरे-धीरे पटरी पर ही नहीं रफ्तार में आ गई थी, बच्चे हुए, घर भरा, दादी माटी के आदमी थे, माटी कमा रहे थे, एक समय वह भी आया जब दादा इलाके के बड़े खेतिहर के रूप में स्थापित हो गए, गाँवों में तब घर में ओसारा और दरवाजे पर अनाज का बखार संपन्नता के सबसे बड़े मानक माने जाते थे, दादा यह कसौटी पार कर गए थे। डोलियाँ आई, डोलियाँ गई, बहुएँ आई, बेटियाँ विदा हुई, दादी का घर बहुओं के कमरे में बँटता गया, पूरे घर की मालकिन दादी अब एक कमरे में सिमट गई। बीच का आँगन उनके लिए धीरे-धीरे 'लाइन ऑफ कंट्रोल' बनता गया और बहुओं के कमरे पड़ोसी राज्य के कब्जे वाला क्षेत्र। ऐसा नहीं था कि दादी को उन कमरों में जाने से कोई रोकता था, लेकिन दादी जब कभी उधर जाती थीं तो बहुओं के व्यवहार में एक अजीब किस्म का मूवमेंट होने लगता था। जैसे वे दादी की नजर से कुछ छुपाना चाहती हैं और इस कोशिश में वे अक्सर असहज हो जाती थीं। यह सब समझते हुए दादी ने बहुओं के कमरों में जाना ही छोड़ दिया। कभी बहुत जरूरत पड़ी तो आँगन से ही आवाज दे देती थीं।

समय के साथ दादी का वह कमरा जरूरी-गैरजरूरी चीजों को रखने का गोदाम बन गया, खैर, दादी भी तो गैरजरूरी चीजों में बदलती जा रही थीं। मेरा आधा बचपन दादी के उसी कमरे में बीता था। समय आगे निकलता रहा, हम बच्चे बड़े होते रहे, दादी

थोड़ी और गैरजरूरी, अप्रासंगिक और बूढ़ी होती गईं। घर दादी के प्रति थोड़ा और लापरवाह होता गया, अपने दुनियादार माँ-बाप के प्रशिक्षण में घर के बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते गए उनका वास्ता दादी के कमरे के साथ ही दादी से भी कम होता गया। बच्चों के मनोरंजन के लिए अब दादी के कमरे में मौजूद कंचे, ताश के पुराने पत्ते, वह बूढ़ा हारमोनियम,रंग-बिरंगे कपड़ों से बनाई गई पुतरियाँ बेकार हो गई थी। उनकी जगह मोबाइल, आईपॉड ने ले ली थी। दादी के सुबह के भजनों को 'रंगोली' ने और रात की लोरियों को 'चित्रहार' ने बेरंग और उदास कर दिया था। फिर भी दादी सब्जी काटते, झाड़ू लगाते कुछ न कुछ गाती रहती थीं, पर एक बात है, उन दिनों दादी 'चइता', 'कजरी', 'कहरवा' 'सोहर' चाहे जो गाएँ आखिर में रोती जरूर थी। दादी को रोते देखकर कोई न कोई बहू या बेटा डाँट देता - 'क्या तुम बात-बात में रोती रहती हो, कोई पास-पड़ोस का देखेगा तो हम लोगों को क्या कहेगा। 'दादी कुछ नहीं कहतीं बस झट से अपने आँसू पोंछ लेतीं।

मैंने एक बार दादी से पूछा था कि 'आप अक्सर गाते हुए रोती हैं और यह देख कर कोई न कोई आपको उल्टा-सीधा बोलता है, तो आप छोड़ क्यों नहीं देती ये गाना-वाना, 'ऐसा नहीं है बबुआ, ये टीवी टाबा चाहे जितने अच्छे हों बाकिर तो ये भला नहीं करते किसी का, और ये चइता, कहरवा, कजरी, सोहर हमार रीति रेवाज है, आपन संस्कार है और संस्कार को दबाना नहीं चाहिए, बोते रहना चाहिए, एकर बिया दुई पाथर के बीच मा भी पड़ जाय तो तनिक हवा, माटी, रोशनी मिलते ही पनप जाई, बस बबुआ हमरा इच्छा तो इहे है कि रोज कुछ ना कुछ उग जाय,' यह कहते हुए दादी की आँखें भर आईं, मैं हैरान था, लेकिन मेरी आँखे न भर आएँ, यह सोचकर मैं जल्दी से वहाँ से हट गया।

दादा को मैंने कभी घर में सोते नहीं देखा। वे हमेशा दरवाजे पर बने फूस के झोपड़े में ही रहते थे, उनका खाना-पीना सब कुछ वही होता था। उनके भीतर एक अजीब किस्म का विराग था। इतनी बड़ी हवेली बना कर खुद झोपड़े में रहते थे। इसका एक व्यवहारिक कारण यह था कि जब से घर में बहुएँ आ गई थीं तब से उनकी सुविधा के लिए वे भी बाहर ही रहने लगे थे, दादा के बेटे, दादा के जुटाए गए संसाधनों का उपभोग करते हुए केंचुआ बन गए थे। उनको अपनी जिंदगी के लिए कुछ करने की जरूरत न ही पड़ी और न उन लोगों ने कोई कोशिश ही की। सुबह उठते ही कुछ

जलपान किया पान का बीड़ा दबाया और निकल पड़ते गाँव या गाँव के चौराहे पर, दोपहर होते-होते चारों सुपुत्रों की चौपाल अलग-अलग जगहों पर जम जाती।

दादा के बेटे दादा के संघर्षों से अर्जित फल धीरे-धीरे कुतर रहे थे, दादा यह सब देखते हुए एकदम चुप रहने लगे थे। डाँटने-फटकारने की उम्र न बेटों की थी और न दादा की ही। दादा का सारा रोब दाब एक उदास सन्नाटे में बदल रहा था और एक रात वो सन्नाटे की स्याही पसर कर दादी की सिंदूरी माँग में फैल गई। बचे खुचे वास्ते तोड़ चले गए दादा। वैसे तो दादा अचानक नहीं गए बल्कि उनके जाने की शुरुआत काफी पहले हो चुकी थी। कहते हैं कि दादा के पेट में कैंसर था, लेकिन यह बहुत सच नहीं है, दरअसल दादा को कैंसर पेट में नहीं, मन में हुआ था, आधी उम्र तक दादा-दादी ने वह घर बनाया था और बाकी उम्र उस घर को बिखरते देख काट रहे थे। बल्कि दादा और उम्र दोनों एक दूसरे को काट रहे थे, घर के भीतर पनप रहा कलह किसी शाम या किसी रात के आखिरी पहर में किसी डूबती-उतराती रुलाई में बाहर आ ही जाता था। कभी इशारे में दादी से कुछ जानना चाहते भी तो दादी एकदम मुकर जाती थीं, पर जो आदमी पूरी उम्र उस महिला की हँसी की आहट भी पहचान लेता रहा, वो क्या उसकी इतनी साफ रुदन की भाषा नहीं पढ़ पाएगा?

अथक कोशिशों के बाद भी दादा का कोई बेटा उनकी आवाज नहीं बन सका। दादी अपनी क्षमता भर दादा की आवाज में आवाज मिलाती रही। दादा आखिरकार दादा थे, वे खूब जान गए थे कि उन्होंने अपनी संपत्ति का वारिस तो पैदा किया है, पर अब उनकी आवाज की विरासत खत्म हो जाएगी। अपने बेटों के विनम्र आलस्य को देखकर वे समझ गए थे कि इनसे कोई विरासत सँभल नहीं सकती। किंतु इस तरह अपने सारे किए-धरे पर पानी फिरता देख दादा का मन घायल हो गया था। वही घाव कैंसर बनता गया, कहते हैं कि यदि समय से कैंसर का पता चल जाए तो उसका इलाज हो सकता है, किंतु यदि कैंसर आदमी के मन में हो जाए तो उसका पता चले या ना चले, पर आदमी तो चला ही जाता है, दादा भी चले गए। दादी छूट गई, दादा के बाद के बाद दादी और तेजी से अप्रासंगिक होती गई। अधिकारों का वह सोना मिट्टी तो पहले ही हो गया था, दादा के जाने पर अब वह मलबा बनता जा रहा था। अप्रासंगिक होने के बोध ने जैसे दादी को और अधिक सक्रिय कर दिया। अब वे घर के मामले में

ज्यादा रुचि लेने लगी थीं। हर बात में अपनी राय जरूर देतीं। हर काम के बारे में जानकारी लेना, आने-जाने वालों के बारे में उत्सुक होना, बाजार में आई झोली-गठरी को झपट के ले लेना और सबसे पहले उसे खोल कर देखना, हम बच्चों को देखते ही कोई न कोई काम बता देना उनकी सक्रियता के नए लक्षण थे। इसके लिए वे अक्सर डाँट सुनती थीं। घर में सबसे बुजुर्ग वहीं थीं। पर उनको डाँटने और नसीहत देने के मामले में घर का हर आदमी उनसे बुजुर्ग बन जाता था। 'ये नहीं कि बैठ कर राम राम जपें, पर मन तो इसमें लगा है कि कौन आया, कौन गया, कौन क्या खा रहा है, कौन कहाँ जा रहा है, अरे ये सब छोड़िए अपना परलोक सुधारिए... परलोक,' इतना डोज तो उनके लिए रोज का था, वे जब भी डाँट सुनतीं तो थोड़ी देर के लिए सन्नाटे में आ जातीं, वो वही सन्नाटा होता जिसमें दादा थे और उसी में चले गए, पर एक बात यह थी कि अब दादी रोती नहीं थीं, शायद ढीठ हो गई थीं, वह सब याद करते हुए मुझे पता नहीं क्यों यह लगता है कि दादी को भी दादा की हर तरह मन का कैंसर हुआ होगा।

घर के भीतर के अपमान को बाहर बरामदे में आते ही दादी भूल जातीं या फिर जानबूझ कर भुला देतीं। गाँव के लोगों के सामने वे खुद को इस तरह पेश करतीं कि जैसे उनका वह अधिकार उस घर में आज भी वैसे ही बना हुआ है। किसी काम से मिलने-जुलने आए लोगों से बहुत ही अधिकार भाव से बात करतीं, इन सबमें उनके पास कुछ खास लोगों का एक समूह था जो लगभग रोज ही उनसे मिलने आ जाता, जिसमें गाँव की वह चुड़िहारिन भी थी जिसकी चूड़ियाँ अब कोई नहीं पहनता, बगल के गाँव का बिसरथा जो अभी ये मानने को तैयार नहीं था कि उसके रिबन, होठलाली, सस्ते क्रीम कब के दौड़ से बाहर हो गए हैं, जीविका चलाने के चक्कर में वह जीरा, धनिया, हींग, और मसाले लेकर लगभग हर तीसरे दिन गाँव में आता ही था, पूरे गाँव की फेरी लगाकर वह भी दादी के पास आकर बैठ जाता था, अब गाँव की बहुएँ और बेटियाँ नए फैशन के हिसाब से अपनी जरूरत की चीजें पास के कस्बे से या चौराहे के जनरल स्टोर्स से मँगवाती थीं। उनके लिए बिसरथा की चीजें बेकार और फालतू हो गई थीं। यही हालत धोबी की भी थी, अब उससे कपड़े कोई नहीं धुलवाता, गाँव का सबसे समृद्ध घर दादी का था, इसी घर के कपड़े धोते धोबी की दो पीढ़ियाँ गुजर गई थीं। जबसे छोटी बहू अपने साथ वाशिंग मशीन लाई, तब से घर के कपड़े मशीन में ही

धुलने लगे थे और चौराहे पर भेज कर प्रेस करा लिए जाते, पर दादी अपनी साड़ियाँ अब भी धोबी से ही धुलवाती थीं।

दादी के इस कुनबे में एक और सदस्य था, जमाली मास्टर, जमाली के नाम में मास्टर विशेषण तो बाद में जुड़ा, उससे पहले वह पूरे गाँव के लिए जमलिया ही था। जमाली एक विचित्र चरित्र था, माँ-बाप पहले ही मर चुके थे और उसकी आदतें ऐसी कि किसी ने अपनी बेटी का निकाह उससे कराने की सोची ही नहीं। वैसे जमाली जब अपनी रौ में आता तो अपने योग्तम होने के एक से बढ़ कर एक किस्से सुनाता... 'शादी हम्मे करनी हेाती तो हम कब्बे कर चुके होते, हम्मे तो एक से एक हिरनी मिलीं बाकिर अपने अल्लाह को इ आफत मंजूर नाही है,' यह कह कर जमाली हर बार इस तरह हँसता कि शादीशुदा लोग अपने वैवाहिक सुखों पर संदेह करने लगते, जमाली अपने बंजारेपन में आसाम, पंजाब, नेपाल कई जगह घूम आया था, पर टिका कहीं नहीं, उसके जैसे आलसी, निक्कमे और बातूनी आदमी को काम कौन देता। गाँव में भी वह मजदूरी का काम तभी पाता जब और कोई मजदूर नहीं मिलता। धीरे-धीरे जमाली गाँव के सबसे आवारा आदमी की पहचान के साथ खुश रहने लगा था। बचपन में वह बड़ी हवेली अपने अब्बा के साथ आया करता था, अब खुद ही घूमते-फिरते चला आता था और दादी के कुनबे का स्थायी सदस्य बन गया था। दादी के पास इन वंचितों की टोली लगभग रोज ही जुटती थी। जितनी देर तक यह बैठक चलती उतनी देर दादी अपने सारे दुख-दर्द भूल जाती थीं।

इस बैठक की अध्यक्षता दादी ही करती थीं। वह जब भी घर के किसी सदस्य को सामने से गुजरता देखतीं तो उसे रोक कर इस पूरी मंडली को चाय-पानी कराने का हुक्म सुना देती थीं। सबके सामने दादी के दिए गए हुक्म को मानना ही पड़ता क्योंकि बड़ी हवेली की इज्जत का सवाल था। दादी ये बात खूब ठीक से जानती थीं इसीलिए उसको जो भी खातिरदारी करनी हो वह इन बैठकबाजों के सामने ही फरमाइश करती थीं। इधर घर में चाय बनाती बहुएँ बड़बड़ाती रहतीं, 'हम लोग बूढ़ा के नौकर लगे हुए हैं'। यह सब करते हुए दादी के भीतर जितना उन लोगों को चाय पिलाने का सुख था उससे कहीं ज्यादा अपने अधिकारों को पुनः पाने का बोध रहता था। इससे दादी लोगों के सामने अब भी अपने महत्वपूर्ण होने का रुतबा हासिल कर लेती थीं, लेकिन इस

कोशिश में दादी के साथ-साथ दादी की टोली के वे सारे लोग भी घर वालों की नजरों में साँप हो गए थे।

ऐसे में एक दिन दादी ने जमाली की आवारागर्दी को देखते हुए उससे कुछ काम-धाम करने को कहा, खैर, जमाली को तो आत्मप्रशंसा में महारत हासिल थी, वह शुरू हो गया... 'एक बात जान लीजिए बुढ़िया दुलहिन, हम चाहें तो कौनो काम कर सकते हैं, बाकिर ई मजदूरी वजदूरी हमको ठीक नहीं लगती है, सोचता हूँ कि कुछ पूँजी का जोगाड़ हो जाता तो अपना बैंड पार्टी खोलते, शौक का शौक... कमाई की कमाई'। उसकी बात सुनकर दादी ठट्टा मारकर हँसने लगीं, ऐसी हँसी तो शायद वह अपनी जवानी के दिनों में ही हँसी होंगी, 'बैंड पार्टी, जमलिया बैंड बाजा बजाएगा? कब्बो हाथ से छुआ भी है बैंड बाजा?' जमाली ने सफाई दी - 'ऐसा मत कहें बुढ़िया दुलहिन, जब हम असाम में थे तो दुनिया के सबसे बड़े बैंड पार्टी के साथ काम करते थे, इ गाँव वाले हमको का समझेंगे?' दादी ने पूछा - 'सच बोल रहा है जमाली?' 'एकदम सच है बुढ़िया दुलहिन,' बुढ़िया दुलहिन को अपने घेरे में फँसते देख जमाली ने नया पैंतरा बदला 'अगर आप हमरा मदद कर दें तो हम वादा करते है बुढ़िया दुलहिन कि आपके आखिरी बरात में हम दरवाजे से लेकर घाट तक बाजा बजाएँगे।'

दादी कुछ देर तक सोचती रहीं, फिर अपने गले में लटके मटमैले धागे में बँधी हुई चाभी निकाली और धीरे-धीरे अपने कमरे में चली गई, थोड़ी देर बाद वापस लौटीं तो उनके हाथ में एक पुराना चाँदी का सिक्का था, जमाली के हाथ में सिक्का देते हुए दादी ने कहा 'ले जा जमाली अपनी बैंड पार्टी बना ले,' सिक्का दे कर दादी वापस अपने कमरे में लौट गईं, घर का कोई आदमी यह जान नहीं पाया कि दादी ने जमाली को क्या दे दिया है, हवेली की सीढ़ियाँ उतरते समय तीसरा दर्जा पास जमाली चाँदी के सिक्के पर खुदे अक्षर मिलाकर पढ़ रहा था
'गि...र...जा...दे...वी...प...त्नी...सु...मे...री...पां...डे', जमाली हैरान था, सिक्के की इबारत पूरी हो गई थी, गिरजा देवी पत्नी सुमेरी पांडे।

इधर दादी की टोली वैसे ही जुटती रही, बस जमाली अब कम आता था, वह इसी लग्न में अपनी बैंड पार्टी तैयार करने के अभियान में जुट गया था।

घर की संरचना में इन दिनों एक नया बदलाव हो रहा था। दादी का बड़ा पोता जो किसी कंपनी में इंजीनियर था, वह अपनी एक सहकर्मी से विवाह कर गाँव आने वाला था। उसके लिए तैयारियाँ जोर-शोर से चल रही थीं। नई बहू के रहने के लिए कमरा चाहिए था। पूरे घर में अब वही एक दादी का कमरा खाली था, हाँ... खाली ही था, दरअसल दादी का होना कुछ होना थोड़े ही था। पूरे अधिकार भाव से दादी की चारपाई वहीं दालान यानी घर के चाँदनी चौक में डाल दी गई। जब दादी की चारपाई उनके कमरे से निकाली जा रही थी तो दादी के चेहरे से ऐसा लगता था, जैसे वह दादी की चारपाई नहीं उसकी मैयत हो, दादी बीच दालान में अपनी चारपाई पर गुमसुम बैठी कमरे को खाली होता देख रही थीं। सारे सामान निकाले जा रहे थे, वो हारमोनियम, लकड़ी की आलमारी, पुराने टिन के बक्से आदि। आखिर में जब मँझला बेटा अपने पिता की तस्वीर लिए निकला तो दादी का गला भर आया। उसने बेटे को रोक कर कहा 'अपने बापू को हमें दे दो बेटा, जब तक हम हैं तब तक तो इनका साथ बना रहे,' बेटे ने तस्वीर माँ को सौंप दी। दादा की तस्वीर हाथ में लेकर कुछ देर दादी यूँ ही देखती रहीं, आँखें भरने लगीं तो दादा की तस्वीर उलटकर अपने सिरहाने रख लिया।

दालान से हमारे के किसी भी हिस्से में पहुँचा जा सकता है। दादी हर तरफ से हो आई हैं, अब उनके लिए सिर्फ बाहर जाने का रास्ता बचा था, वैसे भी दादी के बाहर जाने की शुरुआत हो गई थी।

दादी की वजह से घरवालों के समाने एक नई समस्या आ गई। हुआ यह कि घर का चाँदनी चौक यानी दालान अतिक्रमण का शिकार हो गया। उधर से गुजरते हुए लोग अक्सर दादी की चारपाई से टकरा जाते। जिसको चोट लगती वह दर्द और क्रोध से फड़फड़ाने लगता। दादी हर बार अपने को अपराधी मान झटके से अपनी चारपाई से उठ पड़तीं। उनके चेहरे पर भय, दर्द, लावारिस और अप्रासंगिक होने के भाव एक साथ आ जाते। चोट खाए व्यक्ति को कभी यह नहीं लगा कि वह देख कर चले, बल्कि उसको सबसे पहले यही लगता कि दादी यहाँ रास्ते में क्यों हैं? अगर चोट कुछ ज्यादा होती तो यह भी लगता कि दादी जिंदा क्यों हैं? सबको दादी की चारपाई से लगी हुई चोट तो दिखती थी पर उनकी डाँट-फटकार से दादी के मन पर कितनी चोट लगती थी, वह कोई देख नहीं पाया।

पर इधर दादी के लिए इन सबके बावजूद एक सुखद समाचार यह था कि जमाली की बैंड पार्टी बन गई थी और उसे अब काम भी मिलने लगा था। जमाली जब भी आता, अपने हिस्से की कमाई खर्च-पानी छाँटकर दादी के पैरों पर रख देता था, जो अक्सर तीस या चालीस रुपये होते थे। दादी ने उसे मना भी किया, पर जमाली कहता 'हमार और कौन है?, माई-बाप जो भी हैं, आपे हैं बुढ़िया दुलहिन, खर्चा-पानी के बाद जो बच जाता है वो आपे रक्खें,' साथ ही अपने करतब और अपने कौशल के बारे में बढ़ा-चढ़ाकर कई बातें दादी को बताता रहता। जमाली की बातों का चाहे जो भी हो पर उसकी कमाई बड़े काम की थी। बरसों बाद दादी के हाथ में कुछ पैसे आने लगे थे। अब दादी धोबी को तंबाकू खाने के लिए अक्सर दो-तीन रुपये दे देती। साथ ही अब चुड़िहारिन से सिर्फ बातें ही नहीं करती बल्कि उसकी चूड़ियाँ भी खरीद लेतीं। वैसे ही बिसरथा से रिबन, क्रीम के साथ-साथ जीरा, धनिया, हींग, मसाले आदि खरीदने लगी थी। दादी की इस खरीदारी की जरूरत घर की रसोई को तो थी नहीं इसलिए दादी चुड़िहारिन की चूड़ियाँ धोबी और बिसरथा को दे देती थी और बिसरथा से खरीदे गए मसालों को चुड़िहारिन और धोबी में बाँट देती थी। दादी ने अपनी टोली के लोगों के बीच एक अजब किस्म का सह संबंध विकसित कर दिया था। एक साथ तीन-चार घर चलने लगे थे। इसमें सबसे खास बात यह थी कि ये घर जमाने के निक्कमे जमाली के दम पर चल रहे थे। दादी तो केवल एक 'मेह' थी, और बैंड बजाता हुआ जमाली अब जमाली मास्टर बन गया था।

दादी जमाली से खुश रह करती थी, क्योंकि दादा के बाद और अपने पुत्रों के पहले किसी को कुछ नया करते हुए देख रही थीं,। जब भी कभी दादी पड़ोस के गाँवों में कहीं कोई बैंड बजता सुनती तो खुद से ही कहती - 'ई जरूर जमलिया बजा रहा होगा।'

एक दिन बगल वाले गाँव में भोला महतो के बेटे की शादी में जमाली मास्टर अपनी बैंड पार्टी के साथ पहुँचा हुआ था। बारात में जमाली के गाँव के भी तमाम लोग थे। द्वार पूजा के बाद जमाली मास्टर की बैंड पार्टी से खास-खास गानों की फरमाइशें होने लगीं। जमाली के साथी कलाकार अपना-अपना फन दिखा रहे थे। उसी बीच किसी ने जमाली मास्टर से चइता बजाने को कह दिया। सभी लोग हाँ हाँ कहकर स्वीकृति दिए। पर यह क्या, जमाली को काटो तो खून नहीं, वह सबको सूनी निगाहों

से देख रहा था। लोग 'बजाओ-बजाओ' का हल्ला मचाने लगे। जमाली पसीने से नहा गया। बारातियों के लिए यह एक झटका था कि बैंड मास्टर जमाली को बैंड बजाना आता ही नहीं। जमाली मुँह में सबसे बड़ा वाला बाजा लगाते हुए दोनों गाल फुलाकर बस मुंडी हिलाता था। सबके कोरस में कभी यह पता नहीं चल पाया कि जमाली मास्टर बाजा नहीं बजाता है।

उस दिन उसकी चालाकी पकड़ी गई। जमाली मास्टर जिंदगी में पहली बार अपने किए पर शर्मिंदा था। उसकी यह ठगी देखकर लोगों का गुस्सा बढ़ता जा रहा था। जमाली जिस बाजा को अपने गले में लटकाकर जमाली मास्टर बना था, उसकी अब कोई जरूरत नहीं थी। उसने बाजा नीचे रख दिया और सिर नीचे किए हुए वहीं बैठ गया। भोला महतो के छोटे भाई पहलवान जी आगे बढ़े और जमाली पर दो लात जमा दिए। फिर क्या था, सभी ईमानदारों ने बेईमान जमाली पर अपने लात साफ किए। इसके बाद वे सभी भोजन पर हाथ साफ करने बढ़ गए। जमाली का बाजा टूट गया था। टूट तो उसकी बैंड पार्टी भी गई। साथ ही इस घटना के बाद जमाली के नाम में लगा मास्टर विशेषण भी उससे टूटकर अलग हो गया।

भोर होते ही टूटा हुआ जमाली, टूटे हुए अपने बैंड बाजे के साथ बड़ी हवेली की सीढ़ियों पर लुढ़का हुआ था। दादी को उसकी सारी हकीकत पता चल गई थी। दादी उसके टूटे हुए बैंड बाजे को सूनी निगाह देख रही थी। जमाली रो रहा था - 'हमका एक मौका और दे दो बुढ़िया दुलहिन, आपसे आखिरी वादा कर रहा हूँ आपका जमाली एक दिन मास्टर जरूर बनेगा। एक न एक दिन बैंड जरूर बजाएगा।'

दादी कुछ देर तक उसको देखती रहीं, बस देखती रहीं, सुनी कुछ नहीं, भरे गले से सिर्फ इतना कहा 'हम जानते थे जमाली कि तुम बैंड नहीं बजा सकते हो, पर इतना सा भरम भी नहीं रख पाए,' दादी की आवाज भर्रा रही थी 'मेरा हर सिक्का खोटा निकला है, एक आखिरी सिक्का तुमको दिया था..., बाकिर तो... तुम भी...? जा चला जा, फिर कभी अपना मुँह मत दिखाना,' दादी देख रही थीं कि जमाली फूट-फूट कर रोए जा रहा था और उसकी आँखों से बह रहा था 'गि...र...जा...दे...वी...प...त्नी...सु...मे...री...पां...डे',

इस घटना के बाद दादी की दिनचर्या बदल गई। वह अब बहुत कम बातें करती थी। बहुत जरूरी होने पर ही अपनी चारपाई से उतरती थीं। वह एक उदास सन्नाटे में बदलती जा रही थीं। बाहर के लोगों से भी मिलना-जुलना छोड़ दिया। चुड़िहारिन, बिसरथा, धोबी अब भी आते थे पर दादी तबीयत का बहाना कर मिलने से इनकार कर देतीं। खाने से भी उनको अरुचि हो गई थी। बहुएँ जब उनको खाने को कहतीं तो, कभी भूख नहीं, तो कभी मन नहीं है, कह करवट बदल लेती। दादी के इस तरह के असहयोग से घर के लोग और परेशान हो गए थे, एक दिन आजिज आकर छोटे बेटे ने दादी को बहुत डाँटा... 'आखिर हम लोगों को परेशान कर तुम्हें क्या मिल रहा है माँ? तुम खाओगी नहीं, कुछ बोलोगी नहीं तो हम लोग कैसे जानेंगे कि तुम्हें क्या दिक्कत हैं', दादी बेटे की तरफ देखी भी नहीं, उनके शरीर में थोड़ी हलचल हुई और उन्होंने बेआवाज करवट बदल लिया। बेटा गुस्से में आ गया 'मैं खूब समझता हूँ, तुम ये सब नाटक करके गाँववालों के सामने बड़ी हवेली को बदनाम करना चाहती हो, पट्टीदारी के लोग कहेंगे कि बेटों ने बुढ़िया की बड़ी दिक्कत की है, तुम यही चाहती हो,'

दादी की तरफ से कोई प्रतिक्रिया होते न देख, बेटा पैर पटकते चला गया। उसके जाने के बाद दादी ने अपने सिरहाने से दादा की तस्वीर निकाली और दादा से कहा 'ये झूठ बोल रहा है मलिकार, इन सबों को हवेली की नहीं, अपनी इज्जत की चिंता है, मैं चुप इसलिए रहती हूँ कि ये हवेली बदनाम न हो जाए', यह कह दादी देर तक फूट-फूट कर रोती रहीं।

समय पानी की तरह कुछ और तेजी से बहने लगा था। दादी कुछ और अधिक सन्नाटे में बदलती जा रही थी। जमाली अब किसी से बहुत ही कम मिलता था, अक्सर वह अपना टूटा हुआ बैंड लेकर कभी नहर पर तो कभी सरेह में बैठा उसे बजाने की कोशिश करता रहता। रात के किसी पहर कहीं दूर से 'पें...पें...पों...पों...' की आवाज सुन गाँव में किसी की नींद टूट जाती तो लोग उसे एक भद्दी सी गाली दे करवट बदल लेते कि 'साला इतना मार खाया मगर बेसुरा का बेसुरा रहा।'

उस दिन दादी थोड़ी ज्यादा अनमनी थीं, पर छोटी बहू के कहने पर थोड़ी खिचड़ी खा ली, घर के लोगों को राहत मिली। जैसे आज का काम खत्म हो गया हो। दोपहर बाद दादी गहरी नींद में सो गई। बहुएँ खा पीकर बैठी बातें कर रही थीं। दादी को किसी ने

जगाने की सोची ही नहीं, पर दादी जग गई। टटोलते हुए बिस्तर से उठीं और आँगन में आ गईं। वह किसी को नहीं देख रही थीं। लेकिन उन्हें सब देख रहे थे। बहुओं को लग रहा था कि खाना तो खत्म हो गया है। कहीं बुढ़िया खाने को न कह दे। सब शांत। दादी छड़ी घिसटते हुए बढ़ रही थी। पूरी ताकत लगा हवेली का एक-एक कमरा खोल बहुत ही गहरी निगाह से देख रही थी।

बहुओं को कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि इतने सालों बाद आखिर बुढ़िया इन कमरों में क्या देख रही थी। एक-एक कर दादी ने सारे कमरे घूम लिए पर उस कमरे की तरफ नजर उठा कर देखा तक नहीं, जिसे हमारे घर में दादी का कमरा कहा जाता था। जब हद हो गई तो सझली बहू ने टोका 'क्या खो गया है कि इतनी रात को खटर पटर लगाए हुए हैं,' दादी फिर कुछ नहीं बोलीं, तब तक बड़ी बहू का धैर्य जवाब दे गया 'मुँह में फोड़ा हुआ है क्या कुछ पूछने पर बोलती नहीं,' मँझली बहू ने भी अपनी राय दी 'अरे ना बोलें, अब ऐसा भी नहीं है कि इनके बोलने से मोती झरते हैं,' दादी बिल्कुल खामोश अपने बिस्तर पर बैठी चादर ठीक कर रह थीं। कहीं पीछे न छूट जाए इस लिहाज से सबसे छोटू बहू ने भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराई 'लगता है कि आवाज के साथ-साथ इनका कान भी चला गया है,' इस बार दादी ने अपना सिर उठाया और अपनी बहुओं को बहुत ही सूनी निगाह से देखा। उन्हें देखते हुए दादी शायद यही सोच रही थीं कि ये आपस में चाहे जितना लड़ें, पर मेरे बारे में इनमें गजब की एकता है।

इतनी रात को इस तरह की बातें सुन बड़ा बेटा आँगन में आ गया। उसकी आवाज में गुस्सा था 'ये क्या लगा रखा है तुम लोगों ने? चैन से सोने दोगे कि नहीं... हर समय बकझक, नरक बना दिया है तुम लोगों ने इस घर को,' बहुएँ धीरे से उठीं और गुस्से में अपने कमरे में चली गई। बेटा माँ की तरफ मुड़ा और एक-एक शब्द चबाते हुए कहा 'तुम भी...माँ... हद कर दी हो' दादी बिना कुछ बोले अपने बड़े बेटे के चेहरे को एकटक देखे जा रही थीं, जैसे उस चेहरे को पहचानने की कोशिश कर रही हों, दादी के देखने में पता नहीं ऐसा क्या था कि बड़ा बेटा घबरा गया और अपने कमरे चला गया। पर इस सब में हुआ यह कि रोज रात में दादी की चारपाई के नीचे रखा जाने वाला लोटे का पानी नहीं रखा गया।

दूसरे दिन सुबह की दिनचर्या शुरू हो गई थी। सब अपने-अपने काम में लगे थे। घर का नौकर सारे घर में झाड़ू लगाने के बाद जब दालान में आया तो उसे वहाँ एक अजीब किस्म का सन्नाटा सा लगा। उसने दादी को देखा, दादी का सिर एक तरफ लुढ़का पड़ा था। वह जोर से चीखा - 'बुढ़िया...s...s...s दुलहिन'।

घर के सारे सदस्य जुट गए। गाँव में खबर पहुँच गई कि बुढ़िया दुलहिन नहीं रहीं। दरवाजे पर भीड़ जुटनी शुरू हो गई थी। रिश्तेदारों को लगातार फोन किए जा रहे थे। दादी की लाश दालान से बाहर निकाल दी गई। बड़े बेटे ने अपनी पत्नी से कहा - 'दालान से माँ की चारपाई हटवा दो और वो जगह साफ कर दो। तब तक मैं बाहर का इंतजाम देखता हूँ।'

दादी की चारपाई भी दालान से हटा दी गई। उस चारपाई को देख कर मैं सोच रहा था कि अगर ये चारपाई यहाँ से हट गई तो दादी के बेटे दादी की उम्र में कहाँ सोएँगे।

दादी की अंतिम यात्र की तैयारी जोर-शोर से चल रही थी। सबसे महँगा मलमल का कफन आ गया था। पास के शहर से हजारों रुपये के फूल मँगा लिए गए। तैयारी ऐसी थी कि बड़ी हवेली की बुढ़िया दुलहिन की आखिरी बारात है, पूरे इलाके को इसका पता चलना चाहिए।

दादी के अंतिम दर्शन करने एक-एक कर लोग आ रहे थे। चुड़िहारिन भी घिसटती हुई आई और दादी को प्रणाम कर वहीं बैठ गई। धोबी पहले से ही पहुँचा हुआ था। पास के गाँव का बिसरथा भागा-भागा आया और अपने झोले से एक टुकड़ा कपूर और एक ढेला लोहबान निकाल कर दादी के सिरहाने रख दिया। पर नहीं आया तो सिर्फ जमाली।

खबर उसको भी तो हो ही गई थी, पर दादी ने आखिरी मुलाकात में कहा था - 'जा चला जा... फिर मुझे अपना मुँह कभी ना दिखाना,' इसके बाद अब जमाली आए तो कैसे? जमाली नहीं आया। इसकी नोटिस भी किसी ने नहीं ली, यह केवल जमाली ही जान रहा था कि वह नहीं आया है।

दादी की अंतिम बारात दादी की नहीं, बड़ी हवेली की शान के अनुकूल निकली, दादी का डोला लेकर लोगबाग जैसे ही नहर पर पहुँचे, गाँव के डीह की ओर से बैंड की एक बहुत ही हृदय विदारक ध्वनि सुनाई दी। उस ध्वनि में एक ऐसी तीखी बेधकता थी कि शवयात्रा में शामिल सभी शानदार चेहरे पल भर के लिए उदास हो गए। सबके कदम अनायास ही रुक गए। बड़े मालिक ने पूछा - 'यह बैंड कौन बजा रहा है रे?' गाँव के एक आदमी ने बताया 'जमलिया है मलिकार, जब से भोला महतो के बारात में मार खाया तब से वहीं डीह पर बैठा अपना बैंड साधता रहता हैं,' बड़े मलिकार थोड़ी देर डीह की तरफ देखते रहे और फिर आगे बढ़ गए। मलिकार बढ़े तो सारे लोग भी आगे बढ़ गए। दादी अपने डोले में कब की आगे बढ़ चुकी थीं...।

डीह पर बैठा जमाली रो रहा था कि बैंड बजा रहा था, या फिर दोनों कर रहा था, इस बारे में सबकी अलग-अलग राय थी। पर इतना तो तय है कि जमाली अब 'जमाली मास्टर' बन गया था। दादी का डोला लिए लोग दूर निकल गए थे। पर जमाली का बैंड लगातार बज रहा था... 'मोर जोगिया के मनाई द हो..., मोर जोगिया के मनाई द...।'